ओ३म्-सुप्रभा

वैदिक सभ्यता-संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता की पोषक पत्रिका

ओ३म् क्रतो स्मर ।

वर्ष–7, अंक–12 अगस्त 2014 भाद्रपद

सृष्टि संवत् 1960853115 विक्रमी संवत् 2071 दयानन्दाब्द 191

"स्वाधीनता" के मन्त्र का जप हम सदा करें,
सेवा में मातृ भूमि के तन मन निसार हो ।

स्वतन्त्रता-दिवस

15 अगस्त, 2014

की हार्दिक शुभ-कामनाएँ !

सम्पादक

मूलचन्द गुप्त

ओम् प्रतिष्ठान, कुसुमालय, बी–1/27, रघुनगर, पंखा रोड, नई दिल्ली–110045

ओ३म्

ओ३म्–सुप्रभा

वैदिक सभ्यता-संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता की पोषक पत्रिका

• *परामर्श*

डॉ० धर्मपाल आर्य
(पूर्व कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार)
ए/एच–16, शालीमार बाग,
दिल्ली–110088
दूरभाष–011-27472014
011-27471776

• *सम्पादक*

मूलचन्द गुप्त
(पूर्व प्रधान आर्यसमाज दीवानहाल दिल्ली)

• *प्रकाशक*

मूलचन्द गुप्त,
अध्यक्ष, **ओम्–प्रतिष्ठान**
कुसुमालय, बी–1/27, रघुनगर,
पंखा रोड, नई दिल्ली–110045
दूरभाष–9650886070
011-25394083

ई-मेल-Ompratisthan@gmail.com

ओ३म्–सुप्रभा में प्रकाशित लेखों के सभी विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। वे विचार लेखक के अपने हैं।

प्रकाशक–मुद्रक–स्वामी–मूलचन्द गुप्त द्वारा सम्पादित, तथा वैदिक प्रेस, 995/51, गली नं० 17, कैलाशनगर, दिल्ली–31 (फोन–22081646) से मुद्रित कराकर, ओम् प्रतिष्ठान, कुसुमालय, बी–1/27, रघुनगर, पंखा रोड, नई दिल्ली- 45, से प्रकाशित किया। न्यायक्षेत्र–दिल्ली

उद्देश्य

- वैदिक सभ्यता, संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता का पोषण करना, वैदिक विचार-धारा के अनुसार मानव-निर्माण करना, समरस और समेकित समाज का संगठन करना; विश्व भर में सुख और शान्ति की स्थापना करने का प्रयास करना **ओम्-प्रतिष्ठान** का मुख्य उद्देश्य है।
- इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समय समय पर विभिन्न बहुआयामी गतिविधियों का संचालन किया जाएगा।
- रचनात्मक और प्रेरक साहित्य का सृजन, प्रकाशन और प्रसारण का, इन गति-विधियों में प्रमुख स्थान होगा।
- इस पत्रिका में समय-समय पर आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, नैतिक, वैश्विक चेतना जागृत करने से सम्बन्धित विषयों पर मौलिक लेख तथा समाचार प्रकाशित किए जायेंगे।
- **ओ३म्** परमपिता परमात्मा का निज नाम है। परमात्मा इस सृष्टि का नियन्ता है। सृष्टि से सम्बन्धित सभी विषयों का इसमें समावेश किया जाएगा।
- **ओ३म्-सुप्रभा** का प्रकाशन पूर्णतया निजी स्तर पर किया जा रहा है। उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रति मास देश-विदेश के आर्य विद्वानों, लेखकों, उपदेशकों, कार्यकर्ताओं, प्रकाशकों एवं संस्थाओं को ओ३म्-सुप्रभा **निःशुल्क** भेजी जा रही है।
- लघु-पत्रिका के कारण, प्रकाशनार्थ लेख न भेजें।
- सुधी पाठकों से निवेदन है कि वे अपने सुझाव भेजकर कृतार्थ करते रहें।

ओ३म्-सुप्रभा

वैदिक सभ्यत्ता-संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता की पोषक पत्रिका

रचना, स्थिति और प्रलय, कर्मों का फल जिस का विधान है ।
ओ३म् सुप्रभा ज्ञान अनुपम, सुरभित जिस से जन कुसुम प्राण है ।।

वर्ष–7, अंक–12 अगस्त 2014 भाद्रपद
सृष्टि संवत् 1960853115 विक्रमी संवत् 2071 दयानन्दाब्द 191

ओ३म्–महिमा

अथ यदवोचं स्वः प्रपद्य इति ।

—महात्मा नारायण स्वामी

अथ यदवाचं भूः प्रपद्य इति पृथिवी प्रपद्यऽन्तरिक्षं प्रपद्ये दिवं प्रपद्ये इत्येव तदवोचम् ॥

अथ यदवोचम् भुवः प्रपद्ये इत्यग्निं, प्रपद्ये वायुं प्रपद्य आदित्य प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ॥

अथ यदवोचं स्वः प्रपद्य इत्यृग्वेदं प्रपद्ये यजुर्वेदं प्रपद्ये सामवेदं प्रपद्ये इत्येव तदवोचं तदवोचम् ॥ छान्दोग्य उपनिषद् 3.15.5-7

अर्थ–(अथ, भूः, प्रपद्ये, इति, यद्, अवोचम्) इसके बाद भूः को प्राप्त करता हूं ऐसा जब कहा था (पृथिवी, प्रपद्ये, अन्तरिक्षं, प्रपद्ये, दिवं, प्रपद्ये, इति, एव, तद् अवोचम्) पृथिवी को प्राप्त करता हूं, अन्तरिक्ष को प्राप्त करता हूं, द्युलोक को प्राप्त करता हूं ऐसा ही उस समय कहा था ॥

(अथ, भुवः, प्रपद्ये, इति, यद्, अवोचम्) अनन्तर भुवः को प्राप्त करता हूं ऐसा जो कहा था। (अग्नि, प्रपद्ये, वायुं, प्रपद्ये, आदित्यं, प्रपद्ये, इति एव, तत्, अवोचम्) अग्नि को प्राप्त होता हूं, वायु को प्राप्त होता हूं, आदित्य को प्राप्त करता हूं ऐसा ही तब कहा था ॥

(अथ, स्वः, प्रपद्ये, इति, यद्, अवोचम्) इसके बाद स्वः को प्राप्त होता हूं ऐसा जब मैंने कहा था, ऋग्वेद को प्राप्त होता हूं, यजुर्वेद को प्राप्त होता हूं, सामवेद को प्राप्त होता हूं, ऐसा ही तब कहा था ॥

व्याख्या–इस खण्ड में एक अक्षय कोश का उल्लेख किया गया है।

उस कोश में चार वस्तुयें प्राण, भूः, भुवः और स्वः हैं। और इस कोश को प्राप्त कर लेने से वे चारों वस्तु प्राप्त हो जाती हैं। इस कोश का मध्य भाग अन्तरिक्ष, उत्तर भाग द्युः, नीचे का भाग पृथिवी, इसके कोने चारों दिशायें हैं और ये कोश धन से परिपूर्ण है और विश्व उस कोश के आश्रित है।

उस कोश की पूर्वी दिशा का नाम जुहू है। जुहू शब्द हू धातु से बनता है जिसके अर्थ यज्ञ और दान हैं। तात्पर्य यह है कि यज्ञ और दान करके इस कोश के पूर्वी दिशा पर अधिकार कर लेना चाहिये क्योंकि यही दोनों कर्म साधन हैं। कोश के दक्षिण दिशा का नाम सहमान है। यह सह धातु से बनता है जिसके अर्थ सहने के हैं तपों के सहने (तपस्वी बनने) से कोश के दक्षिण दिशा पर अधिकार होता है। कोश के उत्तर दिशा का नाम राज्ञी है। जिसके अर्थ प्रकाश के हैं, अर्थात् ज्ञान के प्रकाश से हृदय को प्रकाशित कर लेने से पश्चिमी दिशा कब्जे में आ जाती है। उत्तरी दिशा सुभूता है, जिसके अर्थ ऐश्वर्य के हैं। ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेना इस दिशा पर अधिकार प्राप्ति का साधन है।

इन चारों दिशाओं से सम्बन्धित कर्त्तव्यों के पालन कर लेने से कोश पर अधिकार हो जाता है। और कोश के अन्दर जो 4 वस्तुयें हैं, प्राप्त हो जाती हैं :–

(शेष पृष्ठ 18 पर)

ओ३म्-महिमा

–सत्यदेव प्रसाद आर्य 'मरुत'

ओ३म् है नीचे, ओ३म् है पीछे, अगल-बगल में व्यापक ओ३म्।
ओ३म् है आगे, ओ३म् है ऊपर, सदा भरोसा लायक ओ३म्॥

कैसा डर कैसी आशंका, है समक्ष फिर कैसी शंका।
रहे उपस्थित निशिवासर जो, मात पिता सा प्यारा है जिसका।
भूत भविष्य और वर्तमान में तेरा मेरा पालक ओ३म्॥

सूक्ष्म लघु उस सा ना कोई, बृहद् काय दीखे बस वो ही,
अन्दर बाहर चारों ओर से, सदा सहारा देता वो ही।
जीवन-जन्म, मृत्यु-दुर्घटना भवसागर का नाविक ओ३म्॥

देता-देता कुछ ना लेता, खाली को हरदम भर देता।
खुश हो जाते कठिन डगर पर, कूद फाँद जब बने विजेता।
हर उपलब्धि हम अपनी समझें, खुशफ़हमी सुखदायक ओ३म्॥

–नेमदार गंज (नवादा) 805121

सम्पादकीय

'ओ३म् सुप्रभा' का अगस्त 2014 का अंक सुधी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है । इस अंक में हमने यथा पूर्व सामयिक महत्त्व के विषयों पर वैदिक विद्वानों के लेख दिए हैं । 'स्मरण-अनुकरण-नमन' के अन्तर्गत हमने उन वैदिक विद्वानों के प्रति अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किए हैं जिन्होंने वैदिक धर्म, आर्यसमाज तथा सामाजिक न्याय के क्षेत्र में अहर्निश कार्य किया है ।

स्वतन्त्रता दिवस

इस मास में हम सब राष्ट्रीय पर्व स्वतन्त्रता दिवस मनायेंगे । स्वाधीनता संग्राम में प्रमुख आर्यजनों ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया था । महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा था–'कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है । अथवा मत-मतान्तर कें आग्रह रहित, अपने-पराये का पक्षपात-शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायी नहीं है ।' स्वराज्य शब्द का प्रयोग भी सर्वप्रथम उन्होंने ही किया था । उन्होंने कहा था कि मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ करने से पराधीनता छुड़ाके स्वाधीनता स्वीकार करें । महर्षि दयानन्द सरस्वती के शिष्य श्याम जी कृष्ण वर्मा ने क्रान्तिकारी संगठन की नींव डाली थी । लाला लाजपतराय, सरदार अजीत सिंह, भाई परमानन्द, श्री बालमुकुन्द, लाला हरदयाल आदि ने उनका साथ दिया था । महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) का स्वाधीनता आन्दोलन में योगदान स्मरणीय है । स्वाधीनता आन्दोलन में जिन आर्य भाईयों ने भाग लिया, उनकी सूची लम्बी है । हम सभी को सश्रद्ध स्मरण करते हैं ।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी

इस मास में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी है । श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द सरस्वती के विचार द्रष्टव्य है–"देखो ! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है । उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है, जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा । हमारा कर्त्तव्य है कि श्रीकृष्ण जी महाराज के सम्बन्ध में हम कार्यक्रम आयोजित करें तथा उनके योग और नीति विषयक विचारों का प्रचार-प्रसार करें तथा व्यवहार में लायें।

हैदराबाद आर्य सत्याग्रह

आर्यसमाज ने हैदराबाद में धर्मरक्षार्थ आन्दोलन चलाया था, उसी का सुपरिणाम है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् हैदराबाद रियासत भारत का अंग बन सकी । हैदराबाद के नवाब ने हिन्दू जनता पर जो अत्याचार किये थे, उनका इतिहास में अन्य उदाहरण मिलना कठिन है । शिक्षणालय, गुरुकुल,

धर्मशाला, अनाथालय, यज्ञशाला, पाठशाला, आर्यसमाज मन्दिर आदि खोलने पर प्रतिबन्ध था । पुराने भवनों का जीर्णोद्धार नहीं किया जा सकता था । धर्मोपदेशकों को निष्कासित कर दिया गया था । धर्म प्रचार तथा व्याख्यानों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था । आर्यसमाज ने इस सब के विरुद्ध सत्याग्रह का बिगुल बजाया । आर्यसमाज की सभी मांगें न्याय पर आधारित थीं । 17 अगस्त 1939 का दिन आर्यसमाज के लिये विजय पर्व था । उस दिन सभी सत्याग्रही जेलों से छूटकर आये । सार्वदेशिक सभा द्वारा संचालित इस आन्दोलन में भाग लेने वाले सत्याग्राहियों को भारत सरकार ने स्वतन्त्रता सेनानी माना है । हम उन सभी आन्दोलनकारियों तथा सत्याग्राहियों का अभिनन्दन करते हैं ।

श्रावणी उपाकर्म

इसी मास श्रावणी उपाकर्म का भी आयोजन सभी आर्यसमाज मन्दिरों में किया जाता है । वस्तुतः वेद-प्रचार आर्यसमाज का प्रमुख कार्य है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है । इस कृषि प्रधान देश में वर्षा ऋतु के दिन–चातुर्मास के दिन–स्वाध्याय हेतु समर्पित है । अतः इन दिनों में वेदों का स्वाध्याय तथा श्रवण-मनन किया जाता है । रक्षाबन्धन से प्रारम्भ होकर प्रत्येक आर्यसमाज में वेद-प्रचार सप्ताह का आयोजन किया जाता है । श्रावणी पर्व वस्तुतः ज्ञान की साधना का पर्व है । यज्ञोपवीत के महत्त्व को भी हमें समझना होगा । तैत्तिरीय संहिता में कहा है–

जायमानो वै ब्राह्मणः त्रिभीः ऋणेः ऋणवान् जायते ।
ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः, यज्ञेन देवेभ्यः, प्रजया पितृभ्यः ॥

मनुष्य पर तीन ऋणों का भार होता है । वह ब्रह्मचर्य का पालन करके ऋषि ऋण को उतारता है, गृहस्थ धर्म के पालन पूर्वक सन्तानोत्पत्ति से पितृ ऋण तथा यज्ञादि द्वारा देव ऋण से उऋण होता है । इन तीन ऋणों की स्मृति यज्ञोपवीत के तीन सूत्रों से होती है ।

श्रावणी पर्व पर वेदों का श्रवण, शास्त्रों का स्वाध्याय, बृहद् यज्ञों का आयोजन एकाग्रभाव से करना चाहिए । पूर्ण एकाग्रभाव से जब कर्म किया जाए, वह उपाकर्म है । श्रावणी उपाकर्म का पर्व प्राचीन समय से चलता आ रहा है । वैदिक धर्म में स्वाध्याय की सर्वोपरि प्रधानता तथा महत्ता स्पष्ट है। इस अवसर पर संस्कृत दिवस का आयोजन किया जाना महत्त्वपूर्ण है । संस्कृत सभी भाषाओं की जननी है ।

हमारा कर्त्तव्य है कि हम सभी पर्वों का आयोजन एकाग्र भाव से करें और वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में सहयोगी बनें । वस्तुतः वैदिक धर्म मानवता का सन्देश देता है । यही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को जगाता है तथा हमें 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' की ओर अग्रसर करता है ।

इस पावन पर्व पर सभी के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ । *–सम्पादक*

स्वतन्त्रता दिवस पर विशेष—

राष्ट्ररक्षा और विकास

शुभ्रधवल हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक फैला हुआ यह विस्तृत हिन्दुस्तान हमारा "भारतवर्ष", स्वदेश है । यह हमारी स्वर्ग से भी प्यारी महान् मातृभूमि, परम पवित्र मातृभूमि है । इसके सर्वोच्च वैभव के लिए हमारे पूर्वजों ने अपना जीवन समर्पण किया और कृतार्थ व अमर हुए । इस भूमि के मिट्टी का कण-कण और पानी की प्रत्येक बूंद को हम पवित्रतम मानते आये हैं । इस भूमि में जन्म पायी, धर्माज्ञाओं से हमने आचार की शिक्षा पायी । इस भूमि की संस्कृत वाणी ने *"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"* एवं विश्वमेव जयते व *"सत्यमेव जयते" "सिद्धि साध्ये सतामस्तु"* की सार्थक तथा गौरवशाली घोषणा विश्व में निनादित की । एक नहीं, दो नहीं, अपितु पांच हजार वर्ष

भारत मात बसी मेरे मन में

—पं० प्रकाशचन्द्र, कविरत्न

रत्न-प्रसूता पावन धरणी, मंगल-करणी, संकट हरणी ।
शौभित सकल देश देशन में, ज्यों शशि तारागण में ॥
भारत मात बसी मेरे मन में ॥

उन्नत भाल हिमालय सोहे, शुभ्र-तुषार मुकुट मन मोहे ।
धोवत सिन्धु चरण, रवि चमकत, उज्ज्वल विमल गगन में ॥
भारत मात बसी मेरे मन में ॥

निर्मल मृदु गंगा, यमुना जल, तृप्त शान्त, करता अन्तस्तल ।
मोद बढ़ाता श्यामल आञ्चल, जग के जड़, चेतन में ॥
भारत मात बसी मेरे मन में ॥

जो सत् धर्म प्रचारन हारी, ज्ञान, कला विस्तारन हारी ।
प्रथम प्रभात "प्रकाश" हुआ है, जिसके शुभ आंगन में ॥
भारत मात बसी मेरे मन में ॥

की अटूट श्रेष्ठतम और गौरवपूर्ण परम्परा उसके पीछे खड़ी है । मर्यादा पुरुषोत्तम राम, श्रीकृष्ण, छत्रपति शिवाजी महाराज, महर्षि दयानन्द, लोकमान्य तिलक, वीर सावरकर, सरदार भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, महात्मा गाँधी आदि भारत माता के अनेकानेक सुपुत्रों ने इस हमारी मातृभूमि का, इस हमारी

हिन्दू भारतीय संस्कृति का सम्मान और गौरव बढ़ाया और नूतन पीढ़ी को एक उच्चतम आदर्श का उत्तराधिकारी प्रदान किया ।

भारत वर्ष में हमने जन्म लिया और यहीं पर पल कर हम बड़े हुए हैं, इस मातृभूमि के प्रति हमारा प्रेम और अनुराग होना बिल्कुल स्वाभाविक है । जिस प्रकार मनुष्य को अपने परिवार से, माता-पिता, भाई, बहन, स्त्री, पुत्र-पुत्री आदि से प्रेम होता है, उसी प्रकार साथ रहते-रहते अपने पड़ोसियों से भी प्रेम हो जाता है और यही प्रेम का भाव जब और अधिक उदार और विकसित हो जाता है तब मनुष्य अपने सभी देश-वासियों को अपना भाई या मित्र समझ लेता है और उनसे प्रेम करता है । *"जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपी गरीयसी"* का यही अर्थ है कि माँ और जन्मभूमि स्वर्ग से भी अधिक सुख देने वाली है ।

देश-भक्ति मन की एक उच्च भावना है । यह हमें देश के प्रति अपना कर्त्तव्य भावना सर्वस्व बलिदान, साधना व संघर्ष करने के लिए अथवा देश की दशा को सुधारने के लिए प्रेरित करती है । देश को विदेशी आक्रमण से रक्षा करने के लिये देशभक्त त्याग करने से कभी नहीं हिचकिचाता । सच्चे देशभक्त की दृष्टि में देश की सेवा करना ही सबसे बड़ा कर्त्तव्य होता है ।

सच्चे देशभक्त को देश के लिए आत्म बलिदान करना पड़ता है । उसे अपने व्यक्तिगत हानि-लाभ की परवाह न करते हुए देश के हित के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देनी पड़ती है । ऐसी साधना, संघर्ष व बलिदान कभी व्यर्थ नहीं जाती और किसी भी देश के निवासी ऐसे कृतघ्न नहीं होते कि वे ऐसे बलिदान का आदर न करें । सभी देशों में सच्चे देश भक्त स्वतन्त्रता सेनानियों की पूजा व आदर होता है ।

सन् 1857 में लाखों वीरों ने भारत देश को स्वाधीन कराने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी और उसके बाद भी स्वाधीनता की लड़ाई कभी उग्र और कभी मंद रूप में 1947 तक चलती रही । अन्त में भारत स्वाधीन होकर रहा । अनेक नवयुवक भारत की स्वाधीनता के लिए जानते-बूझते हँसते-हँसते फाँसी पर झूल गए या गोलियों के सामने छाती खोलकर वीर गति को प्राप्त हुए, जिनके फलस्वरूप आज हम निर्भय होकर तिरंगा झंडा लहराते हुए स्वाधीनता के मीठे फल खा रहे हैं ।

अब समय की ललकार है कि भारतीय जनता के प्रत्येक वर्ग के नागरिकों के मन में देश की रक्षा और उसके विकास के लिए सक्रिय योगदान करने की भावना जागृत हो तभी हम विश्वास कर सकते हैं, निकट भविष्य में यह *"सोने की चिड़िया"* भारतवर्ष वास्तविक आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व चारित्रिक उन्नति का उच्च स्तर प्राप्त कर सकेगा ।

●

'रक्षाबन्धन' पर्व पर विशेष–

स्वामी श्रद्धानन्द की कलम से–

रक्षाबन्धन का सन्देश

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के संस्थापक, स्वाधीनता सेनानी, अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने 3 सितम्बर 1920 को लिखे इस लेख में बताया है कि प्राचीन भारत में नारी जाति का बहुत सम्मान था। आज के युग में भी इसी भावना के संपोषक की आवश्यकता है। जब व्यक्ति मर्यादा पुरुषोत्तम राम की तरह तथा पाण्डवों की भांति नारी रक्षा के लिये सन्नद्ध हो तथा माताओं व बहिनों का आदर सत्कार करें। यह लेख आज भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। –सम्पादक]

माता का पुत्र पर जो उपकार है उसकी संसार में सीमा नहीं। यही कारण है कि हर समय और हर देश में मातृशक्ति का स्थान अन्य शक्तियों से ऊंचा समझा जाता है। जहां ऐसा नहीं है कि वहां सभ्यता और मनुष्यता का अभाव समझा जाता है।

जब वह मातृशक्ति ऊंचे स्थान पर रहती है तो वह श्रद्धा और भक्ति की अधिकारिणी होती है। और जब वह बराबरी पर आती है तो बहन के रूप में भाई पर प्रेम और रक्षा के अन्य साधारण अधिकार रखती है। एक सुशिक्षित सभ्य देश में देश की माताएँ पूजी जाती हैं, बहनें प्रेम और रक्षा की अधिकारिणी समझी जाती हैं और पुत्रियाँ भावी माताएँ और भावी बहनें होने के कारण उस चिन्ता और सावधानता से शिक्षण पाती हैं, जो बालकों को भी नसीब नहीं होती। यह एक उन्नत और सभ्य जाति के चिह्न हैं।

भारत के स्वतन्त्र सुन्दर प्राचीन काल में माताओं, बहनों और पुत्रियों का यथायोग्य पूजन रक्षण और शिक्षण होता था। यही कारण था कि भारत की महिलाएँ प्रत्युत्तर में पुरुषों को आशीर्वाद देती थीं, उन्हें नाम की अधिकारिणी बनाती थीं, उन्हें अपनी जन्म घुट्टी के साथ वीरता और स्वाधीनता का अमृत पिलाती थीं। उन्हीं पूजा पाई हुई माताओं का आशीर्वाद था जिस कारण भारतवासियों में आत्मसम्मान था। पाण्डव वीर थे, पर यह न भूलना चाहिए कि उन्हें अपना 'पांडव' यह उपनाम उतना प्यारा न था, जितना प्यारा 'कौन्तेय' था। राम का सबसे प्यारा नाम 'कौशल्या नन्दन' है। वे वीर माता के नाम से नाम कमाने को अपमान न समझते थे–उसे अधिक अच्छा समझते थे, और यही कारण था उन पर माताओं का आशीर्वाद फलता था।

राजपूतों में स्त्री जाति की रक्षा करना आवश्यक धर्म समझा जाता था। रक्षाबन्धन उसका एक अधूरा शेष है। यह दिन बहिन और भाई देश की अबलाओं और वीर पुरुषों के परस्पर रक्षा-रक्षक सम्बन्ध को दृढ़ करने का

दिन है । जब भारत में स्वाधीनता आत्म सम्मान और यश का कुछ भी मूल्य समझा जाता था, तब देश के नवयुवक अपनी देश-बहिनों की मानमर्यादा की रक्षा के लिए प्राणों की बलि देने में अपना अहोभाग्य समझते थे ।

परन्तु आज क्या दशा है ? पाठक यह समझकर विस्मित नहीं हों कि हम अब स्त्री शिक्षा और विधवा विवाह का रोना लेकर बैठेंगे । यह रोना रोते-रोते आधी सदी बीत गई-और अब उसका असर देश के सभी विचारशीलों पर है । हम तो आज अपने पाठकों को केवल यह अनुभव कराना चाहते हैं कि स्त्री जाति के प्रति भारतवासियों के जो वर्तमान भाव हैं वह कितने हीन और तुच्छ हैं । यह याद रखना चाहिए कि जो जाति माताओं को इतना हीन और तुच्छ समझती है, वह दासता की ही अधिकारिणी है । हमारे हरेक व्यवहार में हमारे शहरों और गांव के हरेक कोने में हमारे असभ्य और सभ्य नागरिकों के मुंह में दिन-रात माताओं और बहनों का नाम लेकर गालियां निकलती हैं । लड़ाई आदमी से, गाली और बेइज्जती माँ और बहन के लिए। यदि किसी दूसरे को बदनाम करना है तो उसका सबसे सरल उपाय उसकी बहिन या लड़की को बदनाम करना समझा जाता है । सामाजिक स्थिति में स्त्रियों को अछूतों से बढ़कर गिना जाता है । हमारी सभा सोसाइटियों के योग्य उन्हें नहीं समझा जाता ।

स्त्री जाति पर शत्रु का आक्रमण एक ऐसी घटना हुआ करती थी कि उस पर हमारे वीर पुरुषों के ही नहीं, साधारण लोगों के भी खून उबल पड़ते थे । राम ने रावण को मारा, अपनी स्त्री की रक्षा के लिए । पांडवों ने कुरुकुल का संहार किया–द्रौपदी के अपमान का बदला लेने के लिए । राजपूतों में कितने युद्ध केवल महिलाओं के मान रक्षा के लिए हुए और फिर महिलाएं भी अपनी निज बहिन या बेटी नहीं–अपितु जाति की । आज हम लोग अपनी माताओं और बहिनों के लिए गन्दी से गन्दी गालियां सुनते हैं और चुप रहते हैं । विदेशी लेखक और समाचार पत्रों और ग्रन्थों में हमारी स्त्री जाति के लिए निरादर सूचक शब्द लिखते हैं और हम उन्हें पढ़कर चुप रहते हैं । इतना ही नहीं, पिछले साल की मार्शलता की घटनाओं को याद कीजिए । एक विदेशी अफसर आता है और भारत पुत्रियों और माताओं को गांव से बाहर बुलाता है, उनका पर्दा अपनी छड़ी से उठाता है, उन पर थूकता है, उन्हें गन्दी गालियां देता है और भारतवासी हैं, जो इस पर प्रस्ताव पास करते हैं । क्या किसी जीवित जाति में स्त्रियों पर ऐसा अत्याचार सहा जा सकता था ? क्या किसी जानदार देश में ऐसा अपमान करने वाला व्यक्ति एक मिनट भी रह सकता है ? हम पूछते हैं कि क्या राम के समय के क्षत्रिय, क्या भीम और अर्जुन, क्या हम्मीर और सांगा के समय के राजपूत, और क्या शिवाजी के मराठे ऐसे

(शेष पृष्ट 14 पर)

संस्कृत दिवस पर विशेष–

संस्कृत सभी भारतीय भाषाओं की जननी

–डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, राष्ट्रपति

[सभी भाषा विद् इस विषय में एक मत है कि संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषा है तथा ऋग्वेद सबसे अधिक प्राचीन प्रकाशित ग्रन्थ है। भारत की सभी भाषाओं की वह जननी है। पाश्चात्य भाषाओं पर भी उसका प्रभाव देखा गया है। महामहिम डॉ० राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति ने 11 नवम्बर 1955 में तिरुपति में संस्कृत विश्व परिषद के वार्षिकोत्सव पर संस्कृत को भारतीय भाषाओं की जननी माना था। हमें इस बात का दुःख है कि छुद्र राजनीति से प्रेरित कुछ नेता प्रान्तवाद, क्षेत्रवाद की संकीर्णता में उलझकर इस सर्वसम्मत विचारधारा का विरोध आज भी कर रहे हैं। राष्ट्रीय एकता के संवर्धन हेतु, संस्कृत भाषा की महत्ता असन्दिग्ध है। हम देव भाषा संस्कृत के माध्यम से भारत की सभी भाषाओं को एकसूत्र में पिरो सकते हैं जिसका सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रभाव निश्चय ही सुखद परिणाम देने वाला होगा। –सम्पादक]

मुझे इस बात का बहुत हर्ष है कि मैं पहले की भांति इस वर्ष भी संस्कृत विश्व परिषद् के वार्षिकोत्सव में भाग ले रहा हूं, जो वैंकटेश्वर की पवित्र नगरी तिरुपति में हो रहा है। मैं संस्कृत का विद्वान् नहीं हूं और न यह दावा कर सकता हूं कि मैं इस भाषा के अध्ययन के लिए अपनी इच्छा के अनुरूप समय दे सका हूं।

नम्रतापूर्वक केवल इतना ही कह सकता हूं कि संस्कृत के प्रति मेरी अगाध श्रद्धा और प्रेम है।

संस्कृत के प्रति निजी दृष्टिकोण का जब मैं विश्लेषण करता हूं तो इस श्रद्धा के दो कारण दिखाई देते हैं–संस्कृत भाषा की उपादेयता और हमारी भावुकता। संस्कृत वह भाषा है जिसमें भारत की संस्कृति, हमारे अतीत का गौरव तथा भारत की आध्यात्मिक आकांक्षाएं आदि सभी प्रतिबिम्बित होती हैं। भारतीय ज्ञान-भण्डार संस्कृत के अतिरिक्त पाली और प्राकृत में भी उपलब्ध हैं किन्तु ये दोनों भाषाएं भी संस्कृत से मिलती-जुलती हैं। वास्तव में, पाली और प्राकृत का महत्व स्वयं संस्कृत के अध्ययन के पक्ष में एक प्रमाण है, क्योंकि संस्कृत के ज्ञान के बिना इन भाषाओं को ठीक-ठीक समझना सम्भव नहीं। चाहे हम इस देश के प्रसिद्ध दर्शन-शास्त्र का अध्ययन करें अथवा नृत्य तथा संगीत आदि भारत की ललित कलाओं के विकास की खोज करें या इस देश के प्राचीन इतिहास के टूटे हुए क्रम को जोड़ने का प्रयास करें, इन सभी कार्यों के लिए संस्कृत का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

यह सभी जानते हैं कि सुप्रसिद्ध विदेशी विद्वानों ने अपने गहन तथा

आलोचनात्मक अध्ययन द्वारा संस्कृत साहित्य की विशेष सेवा की है। यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि उन विद्वानों के अध्यवसाय के बिना मानवीय विचार तथा संस्कृति के विकास में संस्कृत का जो ऊंचा स्थान रहा है, उसे समझना असम्भव हो जाता। रोज़र ने भर्तृहरि के पदों का डच भाषा में सतरहवीं सदी में अनुवाद किया था। अठारहवीं सदी में विलकिंश महाशय ने काशी में अध्ययन किया और भगवद्‌गीता, हितोपदेश तथा शकुन्तला का अंग्रेजी में अनुवाद किया। शिलर तथा गेटे सरीखे प्रसिद्ध जर्मन कवि इन अनुवादों से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। कौलबुक की चिरस्थायी कृतियां–संस्कृत कोश, हिन्दू विधि, संस्कृत व्याकरण और किरातार्जुनीय का अनुवाद–उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में प्रकाशित हुई। लगभग इसी समय रूसी भाषा में रामायण और महाभारत के अनुवाद भी प्रकाशित हुए। रोज़र और मैक्समूलर ने 1840-70 में वेदों का अनुवाद किया। कई विदेशी विश्वविद्यालयों में 100 वर्ष हुए संस्कृत अध्यापन के लिए पृथक् विभाग खोले गये थे। जर्मन और फ्रांसीसी विश्वविद्यालयों में 1792 में ही संस्कृत-अध्यापन की व्यवस्था हो गई थी। आजकल काबुल विश्वविद्यालय में संस्कृत अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है।

इन सब बातों के कारण ही मैं समझता हूं कि संस्कृत का पठन-पाठन बहुत उपयोगी है। दूसरी बात, भावुकता के सम्बन्ध में जो मैंने कही, उसका आधार भी संस्कृत की उपादेयता ही है। जैसा मैंने अभी कहा संस्कृत साहित्य इस देश का बृहत् ज्ञान-भण्डार है, जिसमें इस देश की दर्शन तथा कला-सम्बन्धी विचारधारा सन्निहित है। भारत की राष्ट्रीय महत्वाकांक्षाओं और सांस्कृतिक परम्परा का प्रमुख माध्यम होने के अतिरिक्त, संस्कृत आधुनिक भारतीय भाषाओं का उद्‌गम-स्त्रोत भी है। दक्षिण की चार भाषाओं पर भी जो भाषा-विज्ञान की दृष्टि से द्रविड़ कुल की भाषाएं हैं, परस्परिक सम्पर्क तथा आदान-प्रदान के कारण संस्कृत का गहरा प्रभाव पड़ा है।

मैंने प्रायः यह सुना है कि सदियों तक समस्त भारत को एकता के सूत्र में बांधे रखने का श्रेय संस्कृत भाषा को है। मुझे इस कथन में काफी सच्चाई जान पड़ती है। आप कल्पना कीजिए कि दो हजार वर्ष पूर्व जब कि भूगोल तथा विस्तार की दृष्टि से हमारा देश आधुनिक भारत से बड़ा था, दूरस्थ प्रदेशों के निवासी किसी प्रकार पारस्परिक व्यवहार करते होंगे और आपसी सम्पर्क बनाये रखते होंगे। उस प्राचीन काल में जिन दिनों आज की तुलना में यातायात के साधन न होने के बराबर थे, समस्त देश में सामान्य रीति रिवाज धार्मिक विश्वास और लगभग एक जैसी शिक्षा पद्धति किस प्रकार सम्भव हुई होगी।

साधारण अभिव्यक्ति और साहित्य का एक सामान्य माध्यम प्राप्त होने के कारण ही सब कुछ हो सका, और यह निर्विवाद है कि वह माध्यम संस्कृत भाषा थी । प्रादेशिक भाषाएं निस्सन्देह विभिन्न प्रदेशों में बोली जाती थीं किन्तु प्राचीन काल में यदि किसी भाषा को राष्ट्रभाषा कह सकते थे तो वह संस्कृत थी । इसका उन दिनों वही पद रहा होगा जो आधुनिक काल में विभिन्न देशों में उनकी राष्ट्रभाषाओं का है । इस देश के सांस्कृतिक विकास में संस्कृत का कितना ऊंचा स्थान है, यह समझने में किसी को कठिनाई नहीं होनी चाहिए ।

मेरा यह अभिप्राय नहीं कि हम संस्कृत को फिर से अन्तर्प्रादेशिक आसन पर पदासीन कर दें या ऐसा कर सकते हैं, यद्यपि मुझे ज्ञात है कि कुछ लोगों द्वारा इस प्रकार की मांग भी की गई है । इस सम्बन्ध में संस्कृत की व्यावहारिकता तथा वांछनीयता के बारे में कुछ न कह कर *मैं इतना ही निवेदन करना चाहूंगा कि आज की परिवर्तित स्थिति में भी संस्कृत का अध्ययन इस देश के लिए निस्सन्देह बहुत मूल्यवान सिद्ध होगा । इस भाषा का पद हम चाहे जो निर्धारित करें यह तो स्वीकार करना ही होगा कि यह हमारी सभी आधुनिक भाषाओं की आधारशिला है ।*

विभिन्न भारतीय देश एक दूसरे से काफी दूर स्थित हैं और उन सबकी अपनी अपनी विशेषताएं, रीति-रिवाज और परम्पराएं हैं । यह सब होते हुए भी जब उत्तर भारत का निवासी दक्षिण भारत के जीवन में उसी प्रकार की आस्थाएं और कर्मकाण्ड देखता है, तो वह मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता । कुछ महीने हुए जब मैं वन-महोत्सव के दिन संयोग से हैदराबाद के किसी ग्राम में था मुझे वृक्षारोपण के लिए कहा गया । वृक्ष लगाने से पूर्व जिन मन्त्रों आदि का उच्चारण किया गया और जिस विधि का अनुसरण किया गया, वह ठीक वही थी जो प्रति वर्ष मैं राष्ट्रपति भवन में देखता हूं । यह सादृश्य उन सभी रिवाजों के सम्बन्ध में देश भर में पाया जाता है, जिन्हें हम सोलह संस्कार कहते हैं और जिनका पालन करना प्रत्येक हिन्दू अपना कर्तव्य समझता है ।

यही कारण है कि आपकी परिषद् का प्रमुख उद्देश्य संस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहन देना और इस देश में उस भाषा को उसके महत्व के अनुरूप स्थान दिलाना है । निस्सन्देह, इस सभा में उपस्थित विद्वत्मण्डली इस विषय पर विवेचनात्मक रूप से विचार करेगी और इस दिशा में देश का पथ-प्रदर्शन कर सकेगी । इस सत्प्रयास में मैं हृदय से परिषद् की सफलता की कामना करता हूं ।

(पृष्ठ 10 का शेष)
जातीय अपमान को क्षण-भर भी सहते ? क्या भारत की भूमि ऐसे तिरस्कार के पीछे भी शान्त रहती ? कभी नहीं, उसमें वह भूडोल आता जिसमें शासकों का दर्प और पापी का पाप चकनाचूर हो जाता। पर हाय ! यह आत्मसम्मान का भाव इस अभागे देश में बाकी नहीं रहा। माताओं और बहनों के लिए वह अतुल भक्ति और प्रेम का भाव अब भारतवासियों में नहीं रहा।

रक्षाबन्धन उन्हीं भावों का चिह्न था। आज भी वह कुछ सन्देश रखता है। आज भी वह अबला की पुकार देशवासियों के कानों में डाल सकता है—पर यदि कोई सुनने वाला हो। जिनके कान हैं वह रक्षाबन्धन के सन्देश को और अबलाओं की पुकार को सुन सकते हैं। यदि वह भी नहीं सुन सकते, तो फिर हे देशवासियों ! अपने भविष्य से निराश हो जाओ। तुम्हारे जीने से न कोई भला है और न उसकी आशा है। जिस जाति के पुरुष अपनी माताओं, बहिनों और पुत्रियों के मान की रक्षा नहीं कर सकते, वह जाति इस भूतल से धुल जाने के ही योग्य है। *[श्रद्धा, 3 सितम्बर 1920 से उद्धृत]*

स्वतन्त्रता दिवस

—रघुनाथ प्रसाद विकल

पुनः दिवस पुनीत आज आ गया।
कि टूट जब गई गुलाम शृंखला।
स्वतन्त्र थी हुई समुद्र-मेखला।
कि जब गगन विराट था गरज उठा
कि लो चली परतन्त्रता-कुहेलिका।
कि आ गयी उषा, प्रभात आ रहा।

कि कलकला उठी समुद्र धार जब,
सुनो स्वदेश की विजय गुहार अब।
मिटी समग्र देश से मलिनता,
कि थी मुरझा रही, पनप उठी लता।
कि आसमान लो सुधा गिरा रहा।

यह पुनीत दिन नमस्य है, मगर—
विजय मिली अनेक शीश दान कर,
कि शीश दान कर चुके शहीद जो,
न बैठ जायें हम उन्हें विसार कर।
यही तिरंगा भी फहर सुना रहा॥

आर्यसमाज साधन है और वैदिक मानव धर्म साध्य है

—मुनि ओमाश्रित

गतांक से आगे–

आठवां नियम अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि के सम्बन्ध में है। नवां तथा दसवां नियम सामाजिक व्यवस्था के सम्बन्ध में है । आर्यसमाज के जैसे सनातन, सार्वभौम तथा स्वतन्त्र नियम विश्व की किसी भी संस्था के देखने को नहीं मिलेंगे–यह एक ध्रुव सत्य है । इन नियमों को विश्व के प्रत्येक भाग में तथा प्रत्येक समय में जन-कल्याणार्थ कार्यान्वित किया जा सकता है । इन नियमों में वर्णित उद्देश्यों के प्रचार तथा उनकी पूर्ति के लिए ही महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना की थी । इन उद्देश्यों के प्रचार का अर्थ ही सत्य सनातन आर्य मानव वैदिक धर्म का प्रचार करना है।

"अतः आर्यसमाज साधन है और सत्य सनातन आर्य मानव वैदिक धर्म साध्य है ।"

आर्यसमाज द्वारा अद्वितीय महान् सेवाएं

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए गत सौ वर्षों में आर्यसमाज द्वारा सेवाएं भी जन कल्याणार्थ इतनी व्यापक महत्वपूर्ण और ठोस हैं कि यदि उनका विस्तार सहित उल्लेख किया जाये तो वे कई भागों में इतिहास का विषय बनेंगी । ईश्वर और वेद का वास्तविक स्वरूप, सन्ध्या और यज्ञ का प्रचार, ओ३म्, आर्य और नमस्ते शब्दों का पुनः प्रचार, ब्रह्मचर्य तथा योग का महत्व, वर्णाश्रम धर्म का यथार्थरूप, नारी जाति का सम्मान और उसकी शिक्षा, स्वराज्य की भावना, विशुद्ध भारतीय राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करना, दलितोद्धार, जन्म-परक जातपांत का विरोध, स्वदेशी का प्रचार, राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार, गुरुकुल शिक्षा प्राणाली की पुनः स्थापना, संस्कृत तथा हिन्दी का प्रचार, मद्यमांस के विरुद्ध प्रचार, बाल-विवाह के विरुद्ध प्रचार, संस्कारों को वैदिक रीति से कराना, अनाथों, विधवाओं, दु:खी स्त्रियों, दुर्भिक्ष, महामारी, भूकम्प तथा अन्य किसी भी प्रकार की आपत्तियों से पीड़ितों तथा असहायों की सेवा तथा सहायता कार्य और विधर्मियों के प्रवेश के लिये सत्य सनातन आर्य वैदिक धर्म का द्वार खेल देना आदि–यह सब अद्वितीय, महान् और चतुर्मुखी सेवाएं हैं जिनको देश में आर्यसमाज के अतिरिक्त अन्य कोई भी संस्था इस देश की एक सहस्त्र वर्ष की पराधीनता के युग में नहीं कर सकी । आर्य गुरुकुलों, डी० ए० वी० कालिजों, डी० ए० वी०

स्कूलों, कन्या विद्यालयों, विधवा एवं अनाथाश्रमों का भी जितनी संख्या में आर्यसमाज संचालन कर रहा है, देश में अन्य कोई भी संस्था उतनी संख्या में नहीं कर रही।

अंग्रेजों के युग में सत्य के प्रचारार्थ और धर्म की रक्षार्थ जितने बलिदान आर्यों को देने पड़े, अन्य किसी भी मत के अनुयायियों को उतने बलिदान नहीं देने पड़े। इस देश के स्वतन्त्रता संग्राम में जितने आर्य अपनी संख्या के अनुपात से जेल गये, उतने अन्य किसी भी मत के अनुयायी जेल नहीं गये।

स्वराज्य आन्दोलन

कांग्रेस के जन्म से कई वर्ष पूर्व महर्षि दयानन्द ने स्वराज्य का सिंहनाद किया था। कांग्रेस जब अधिकांश में जी हुजूरों की तफरीगाह 'महफिल' बनी हुई थी, अंग्रेजी सरकार ने उस समय आर्यसमाज को एक खतरनाक क्रान्तिकारी संस्था घोषित की हुई थी, जिसके कारण उस युग में आर्यों को नाना प्रकार की यातनायें और कष्ट सहने पड़े थे।

महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज की शिक्षाओं से प्रभावित होकर ही श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा, स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, वीर सावरकर, भाई परमानन्द, रामप्रसाद बिस्मिल, सरदार भगतसिंह आदि ने अपना सर्वस्व देश की बलिवेदी पर अर्पण किया था।

इस देश के बाहर दक्षिण अफ्रीका, पूर्वीय अफ्रीका, फीजी, मौरिशस, ट्रीनीडाड, गयाना, डच गयाना, सिंगापुर, ब्रह्मा आदि में भी धर्म और आर्य संस्कृति का सन्देश आर्यसमाज ने ही पहुंचाया।

आर्यसमाज द्वारा की गई यह सब यह सब शानदार सेवाएं और कार्य हैं जो देश के एक सहस्त्र वर्ष के राष्ट्रीय निर्माण के इतिहास में उसे प्रथम स्थान पर लाकर खड़ा कर देते हैं।

भविष्य में आर्यसमाज के द्वारा समस्त विश्व में सत्य सनातन आर्य मानव वैदिक धर्म के आधार महर्षि दयानन्द के सन्देश को किस प्रकार अधिक विस्तार के साथ प्रसारित किया जा सकता है–इस विषय में फिर कभी विचार व्यक्त किये जायेंगे। ●

स्मो वयं, सन्ति नो धियः।

हम हैं तो हमारी धारणाएं वा बुद्धियां और कर्म भी हैं
नहीं तो हम हैं ही नहीं।

सश्रद्ध नमन–श्री लक्ष्मण स्वरूप गुप्त

अचानक 3 जुलाई की प्रातः छः बजे चिरंजीव नरेश कुमार गुप्ता ने दूरभाष पर सूचना दी कि उनके पिता श्री लक्ष्मण स्वरूप गुप्त का शरीर प्रातः 5.30 बजे पूरा हो गया है, अचानक ही हृदय पर वज्रपात सा हुआ।

आर्यजगत् में अनुसंधान और प्रकाशन की परम्परा को आजीवन प्रगति देने वाले शामली निवासी स्वनाम धन्य श्रीयुत लाला चतुर सेन गुप्त जी के परिवार में सात भाई-बहनों में सबसे बड़े स्व० श्री मुरारी लाल बिंदल, स्व० सुशीला देवी, श्री नारायण प्रसाद गुप्त, श्री लक्ष्मण स्वरूप गुप्त, श्री गुरुचरण बिन्दल, श्रीमति प्रेमलता सिंघल फिर श्री मूलचन्द गुप्त सभी जन्म से ही आर्य संस्कारों में पले-बढ़े हैं।

किसी महान् दार्शनिक ने कहा था–दूर से अधिकांश व्यक्ति मधुर लगते हैं, पर जब पास जाते हैं तो पसीने की दुर्गन्ध आती है।' परन्तु स्व० श्री लक्ष्मण स्वरूप गुप्त के व्यक्तित्व में जितना उनके पास जाते, उतने ही आदर्श और यथार्थ के साथ एकात्मा के शौरभ की सुगन्ध पाते थे। इसका कारण आप धार्मिक, सामाजिक तथा व्यवसायिक सभी क्षेत्रों में स्तुत्य ही रहे।

अपनी शिक्षा-दीक्षा पूर्ण कर आपने रामलक्ष्मण शुगर मिल्स मोहिउद्दीनपुर, (मेरठ) में श्री जे० डी० गोयल, जनरल मैनेजर के सहायक के रूप में लम्बे समय तक कार्य किया। पश्चात् मोदी उद्योग समूह के केन्द्रिय कार्यालय में कार्य किया। तत्पश्चात् आप दिल्ली आ गये। यहां आपने सन् 1972 ई० से 1973 ई० तक पिताश्री के निर्देशन में 'आर्य व्यवहार प्रकाशन' का सफल संचालन कर आर्य साहित्य की अनेकानेक पुस्तकों का प्रकाशन किया। इस अल्पकाल में आपने महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत 1. व्यवहार भानु, 2. आर्यभिविनय, 3. गौ करुणानिधि, 4. महर्षि दयानन्द के मत में मनुष्य, 5. महर्षि दयानन्द के शिक्षाप्रद विचार, आचार्य चाणक्य प्रणीत-चाणक्य राज्यसूत्रम, महर्षि दयानन्द के शिष्य मुन्शी समर्थदान रचित-स्वधर्म रक्षा, क्षत्रपति शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास के उपदेश, पं० हरिशंकर (बिजनौर) की पुस्तक-त्यौहारों पर विचार, लाला चतुरसेन गुप्त प्रणीत–1. महान् आर्य हिन्दू जाति विनाश के मार्ग पर (दो माह में दस-दस हजार के तीन संस्करण) 2. वेद पाठ (महर्षि दयानन्द कृत ग्रन्थों पर आधारित) 3. आर्य व्यवहार डायरी–1973, 4. विधि के विधान, आज निर्धन, कल धनवान आदि अनेक पुस्तकों का प्रकाशन किया।

दुर्भाग्य से 23 दिसम्बर 1973 को, पिताश्री के अकस्मात निधन से आपको गहरा आघात लगा और आप प्रकाशन कार्य को बीच में ही बंद कर

अपनी जन्मस्थली शामली चले गये। और पुनः व्यापारिक कार्यों में लग गये।

आप सदैव ही कार्यरत रहते थे, अतः कई बार यह अनुभव होता था कि आपमें अद्भुत कार्यक्षमता तथा उर्वरा कल्पना शक्ति का कितना अनुपम संगम है, आपका जीवन अंतिम समय तक सरल और सादा रहा है।

आज हमें इस बात का गौरव अनुभव होता है कि आपके पुत्र और पुत्रियां सभी संस्कारित हैं। और अपने-अपने कार्यों में पिता के नाम और संस्कारों को उज्जवल कर रहे हैं।

इस दुख की घड़ी में परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि उनकी धर्मपत्नी आदरणीय पुण्यशीला रामोदेवी तथा उनके पुत्र पुत्रियों को इस दुःख को सहन करने की शक्ति और दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करे। ●

(पृष्ठ 4 का शेष)

(1) प्राण के प्राप्त होने से उसका नाम प्राणियों पर अधिकार होता है।

(2) भूः के प्राप्त होने से पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युः को, उनके ज्ञान द्वारा प्राप्त कर लेता है।

(3) भुवः के प्राप्त होने से अग्नि, वायु और आदित्य से लाभ उठाने की योग्यता प्राप्त हो जाती है।

(4) स्व पर अधिकार होने के अर्थ वेदज्ञान की प्राप्ति है।

इस खण्ड में वायु को दिशाओं का वत्स कहा गया है। वायु को दिशाओं का वत्स इसलिये कहा गया है कि इन दिशाओं की गोद में वह पूर्ण स्वतन्त्रता से बहता है। इस वायु के जान लेने से मनुष्य पुत्रशोक से बच जाया करता है। ●

लाला चतुरसेन गुप्त आर्य पुस्त्कालय

आर्यसमाज के स्वाध्यायशील, कर्मशील, लग्नशील कर्मठ कार्यकर्त्ता 86 वर्षीय श्री रामसिंह जी शर्मा ने अपने निजि संग्रह से 125 पुस्तकें लाला चतुरसेन गुप्त आर्य पुस्तकालय को भेंट की हैं। हम उनका आभार व्यक्त करते हैं।

आप आर्यसमाज सदर बाजार दिल्ली के सन् 1951-52 में मन्त्री रहे। आपने आर्यसमाज किदवई नगर (पूर्वी), नई दिल्ली की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान किया तथा उसके वर्षों पर्यन्त प्रधान रहे। आपने गत सात दशकों में दिल्ली की विभिन्न आर्यसमाजों तथा आर्य महासम्मेलनों में युवकों की तरह कार्य किया है। आप स्वस्थ रहते हुए शतायु हों, यही प्रभु से कामना है।

—सम्पादक

गतांक से आगे–

चाणक्यसूत्राणि

दोषवर्जितानि कार्याणि दुर्लभानि ॥१०५॥

सर्वथा निर्दोष कार्य असम्भव होते हैं ॥१०५॥

दुरनुबन्धं कार्यं नारभेत ॥१०६॥

जिन कार्यों में विशेष झंझट दिखाई दे, उन्हें आरम्भ ही न करे ॥१०६॥

कालवित्कार्यं साधयेत् ॥१०७॥

समय की गति को देखकर काम करने वाला ही सफल होता है ॥१०७॥

कालातिक्रमात् काल एव फलं पिबति ॥१०८॥

समय का अतिक्रमण करने वाले मनुष्य का समय ही सब फलरूपी रस पी जाता है ॥१०८॥

क्षणं प्रति कालविक्षेपं न कुर्यात् सर्वकृत्येषु ॥१०९॥

अतएव सभी कार्यों में समय का अतिक्रमण न होने दे ॥१०९॥

देशकालविभागौ ज्ञात्वा कार्यमारभेत ॥११०॥

देशकाल का विभाग करके कार्य आरम्भ करे ॥११०॥

देवहीनं कार्यं सुसाध्यमपि दुःसाध्यं भवति ॥१११॥

यदि भाग्य साथ नहीं देता तो सुसाध्य कार्य भी दुःसाध्य हो जाता है ॥१११॥

नीतिज्ञो देशकालौ परीक्षेत ॥११२॥

नीतिज्ञ राजा का यह कर्तव्य होता है कि वह देश काल पर सदा सतर्क दृष्टि रक्खे ॥११२॥

परीक्ष्यकारिणि श्रीश्चिरं तिष्ठति ॥११३॥

देश काल को देखकर कार्य–करने वाले के पास लक्ष्मी चिरकाल तक निवास करती हैं ॥११३॥

सर्वाश्च सम्पदः सर्वोपायेन परिग्रहेत् ॥११४॥

राजा को चाहिए कि सब प्रकार की सम्पदाओं को सभी उपायों रसे संगृहीत करे ॥११४॥

भाग्यवन्तमपरीक्ष्यकारिणं श्रीः परित्यजति ॥११५॥

चाहे कोई कितना ही भाग्यवान् हो, यदि वह विना सोचे–विचारे काम करता है तो लक्ष्मी उसे त्याग देती है ॥११५॥

ज्ञानानुमानैश्च परीक्षा कर्तव्या ॥११६॥

प्रत्येक वस्तु की परीक्षा प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुमान से करनी चाहिए ॥११६॥

यो यस्मिन् कर्मणि कुशलस्तं तस्मिन्नेव योजयेत् ॥११७॥

जो मनुष्य जिस कार्य में निपुण हो, उसे उसी काम पर लगाये ॥११७॥

दु:साध्यमपि सुसाध्यं करोत्युपायज्ञः ॥११८॥

उपाय को जानने वाला मनुष्य दु:साध्य कार्य को भी सुखसाध्य बना लेता है ॥११८॥

अज्ञानिना कृतमपि न बहु मन्तव्यम् ॥११९॥

अज्ञानी मनुष्य यदि कोई काम कर गुजरे तो उसे महत्व न दें । क्योंकि बहुतेरे काम अचानक हो जाते हैं ॥११९॥

यादृच्छिकत्वात् कृमिरपि रूपान्तराणि करोति ॥१२०॥

कभी-कभी एक साधारण कीड़ा भी इच्छानुसार रूप बदल लेता है ॥१२०॥

सिद्धस्यैव कार्यस्य प्रकाशनं कर्त्तव्यम् ॥१२१॥

जब काम पूरा हो जाय, तभी उसे प्रकाशित करे ॥१२१॥

ज्ञानवतामपि दैवमानुषदोषात् कार्याणि दुष्यन्ति ॥१२२॥

ज्ञानी पुरुष के कार्य भी किसी मनुष्य के दोष तथा दैव के प्रतिकूल होने पर बिगड़ जाते हैं ॥१२२॥

दैवं शान्तिकर्मणा प्रतिषेद्धव्यम् ॥१२३॥

यदि दैव अपने प्रतिकूल हो तो जप, होम आदि शान्तिकर्मों द्वारा उसे शान्त करे ॥१२३॥

मानुषीं कार्यविपत्तिं कौशलेन विनिवारयेत् ॥१२४॥

अपने किसी कार्य में कोई बाधा आ उपस्थित हा तो उसे कौशल (चतुराई) से दूर करे ॥१२४॥

कार्यविपत्तौ दोषान् वर्णयन्ति बालिशाः ॥१२५॥

कोई काम बिगड़ जाने पर मूर्ख लोग उसके दोष का रोना रोते हैं ॥१२५॥

कार्यार्थिनादाक्षिण्यं न कर्त्तव्यम् ॥१२६॥

जो अपना काम बनाना चाहे, वह बहुत भोला न बने ॥१२६॥

क्षीरार्थी वत्सो मातुरूधः प्रतिहन्ति ॥१२७॥

क्योंकि दूध पीने का इच्छुक बछड़ा भी अपनी माता के स्तन पर टक्कर मारता है । अतएव बिना टक्कर मारे कार्यसिद्धि नहीं होती ॥१२७॥

अप्रयत्नात् कार्यविपत्तिर्भवेत् ॥१२८॥

प्रयत्न न करने पर काम बिगड़ जाता है ॥१२८॥

न दैवप्रमाणानां कार्यसिद्धिः ॥१२९॥

भाग्य के भरोसे रहनेवालों का कार्य नहीं सिद्ध होता ॥१२९॥

(क्रमशः)

प्रकाशक-मुद्रक-स्वामी-मूलचन्द गुप्त द्वारा सम्पादित, तथा वैदिक प्रेस, 995/51, गली नं०17, कैलाशनगर, दिल्ली-31 (फोन-22081646) से मुद्रित कराकर, ओम् प्रतिष्ठान, कुसुमालय, बी-1/27, रघुनगर, पंखा रोड, नई दिल्ली- 45, से प्रकाशित किया । न्यायक्षेत्र-दिल्ली ।